शोध संचयन
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
Vol. 9
Issue 1
15 January, 2018

श्रीमद्‌भगवद्गीता की शिक्षोन्मुखी केन्द्रीय भाव-भूमिः अर्जुन का मोहभंग

बीज शब्द :

*****

डॉ. सुनीता सिंह
वी.एस.एस.डी कॉलेज, कानपुर

श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षोन्मुखी केन्द्रीय भाव-भूमिः अर्जुन का मोहभंग

अर्जुन की भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति पूर्ण आस्था थी। भगवान् श्रीकृष्ण के आश्रय में जाने की उनकी पूरी पात्रता थी। यही कारण है कि कृष्ण के कहने पर वे सोचते है कि भीष्म, द्रोण आदि को मारना मेरी सम्मति में धर्मयुक्त न होने पर भी भगवान् ऐसा करने के लिए कह रहे हैं तो जरूर मेरी सम्मति में कोई गलती होगी।[4] यह मानकर अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण के शरणागत हुए थे। अर्जुन योद्धा थे, कायरता उनके व्यक्तित्त्व का लक्षण नहीं था। पूरे गीता में श्रीकृष्ण ने उन्हे कहीं 'कायर' शब्द से संबोधित नहीं किया बल्कि यह कहा था कि 'हे अर्जुन! इस विशेष अवसर पर तुम्हें यह कायरता कहाँ से (कुतः) प्राप्त हुई?[5] **कुतः** कहने का तात्पर्य यह है कि मूल में यह कायरता रूपी दोष तुम्हारे में (स्वयं में) नहीं है। यह आगन्तुक दोष जो सदा रहने वाला नहीं है।[6]

मोहग्रस्त अर्जुन-

महाभारत के रणक्षेत्र में धृतराष्ट्र पुत्रों को युद्ध के लिए तैयार देखकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा- 'हे अच्युत! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कीजिए।[7] जबतक कि मैं युद्ध-क्षेत्र में डटे हुए युद्ध के अभिलाषी विपक्षी योद्धाओं को भली प्रकार देख लूँ कि इस युद्ध व्यापार में मुझे किन-किन के साथ युद्ध करना योग्य है।[8] श्रीकृष्ण सारथी हैं, वे रथवान अर्जुन के निर्देशों का पालन करते हैं और सेनाओं के निरीक्षण हेतु अर्जुन को सेना के मध्य में लाकर खड़ा करते हैं। ''दोनों सेनाओं के मध्य में खडे होने पर अर्जुन ने दोनों ओर अपने स्वजन-समुदाय को देखा। भूरिश्रवा आदि पिता के तुल्य थे, भीष्म और सोमदत्त इत्यादि पितामह एवं प्रपितामह (बाबा, परबाबा) थे, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य आदि गुरुजन थे, पुरुजित्, कुन्तीभोज, शल्य आदि मामा थे, अभिमन्यु आदि पुत्र थे, कुछ पौत्रों के समान थे, अश्वत्थामा आदि कुछ सुहृद् (हितैषी) थे। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, जयद्रथ आदि सम्बन्धी भी थे। उसके मन में उन्हें देखकर केवल स्वाभाविक करुणाभाव ही नहीं जागा, असाधारण करुणाभाव (कृपया परयाविष्टो) जाग गया। यह एक दोष था तथा रणक्षेत्र में वीर क्षत्रिय के लिए कदापि उचित नहीं था।''[9] रणक्षेत्र में उपस्थित उन संपूर्ण बंधुओं को देखकर अर्जुन ने कहा- हे कृष्ण! युद्ध की इच्छा वाले खड़े हुए स्वजन-समुदाय का देखकर मेरे अंग शिथिल हुए जाते हैं। और मुख भी सूखा जाता हैं और मेरे शरीर में कंप तथा रोमांच होता है,[10] तथा हाथ से गाण्डीव धनुष गिर रहा है और त्वचा भी बहुत जल रही हैं तथा मेरा मन भ्रमित सा हो रहा है, इसलिए में खड़ा रहने में समर्थ नहीं हूँ[11] और हे केशव लक्षणों को भी विपरीत ही देखता हूँ तथा युद्ध में अपने कुल को मारकर कल्याण विपरीत भी नहीं देखता हूँ।[12]

अभी कुछ ही देर पहले अर्जुन यह कह रहा था कि मैं युद्ध में खड़े हुए लोगों को देखूँगा कि इनमें से कौन मुझसे युद्ध करने योग्य हैं। एक क्षण में ही भाव परिवर्तन हो जाता है और कहता है कि अपने बंधु-बांधवों को देखकर मेरे अंग शिथिल हुए जा रहे हैं,[13] शरीर काँप रहा है ''युद्ध के लिए खड़े हुए स्वजन समुदाय को देखकर असीम करुणाभाव ने उसके मन को ग्रस्त कर लिया, उसके मन में ग्लानि और खिन्नता छा गयी। विषाद की मनःस्थिति को अर्जुन श्रीकृष्ण से छिपा न सका। भ्रमित मन के कारण उसके शरीर की दशा भी शोचनीय हो गयी। शरीर की अवस्था मानसिक अवस्था पर निर्भर रहती है, क्योंकि देह मन का अनुगामी होता है। यदि मन स्वस्थ और शान्त है तो शरीर नियन्त्रण मे रहकर स्वस्थ और शान्त ही रहता है, किन्तु यदि मन नियन्त्रण में न रह सके तथा व्याकुल और अशान्त हो जाता है तो शरीर में भी व्याकुलता छा जाती है। अनुचित दया के करण उत्पन्न विषाद ने अर्जुन को व्याकुल बना दिया और वह अपने ऊपर नियन्त्रण न रख सका। वह अपनी मानसिक अवस्था को न नियन्त्रित कर सका और न छिपा सका। वीर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से अपनी मानसिक एवं शारीरिक दशा का वर्णन करते हुए स्पष्टतः स्वीकार किया कि उसके अंग शिथिल हो गये, मुख सूख गया, शरीर काँपने लगा, रोमाच्च होने लगा, धनुष हाथों से छूटने लगा, त्वचा में दाह-सा होने लगा, वह खड़ा रहने मे भी समर्थ न रह सका और मन चकराने लगा। करुणाजनित विषाद के करण वीर अर्जुन के मन तथा शरीर में कायरता के लक्षण प्रकट हो गये। असीम मानसिक पीड़ा ने उसे दयनीय बना दिया।''[14] ''मोह की दशा में अर्जुन गाण्डीव को पकड़े रहने में भी अपने को असमर्थ पा रहा है। जिस पर उसे पूर्ण विश्वास था। अहंकार के इस क्षणिक आवेश में अर्जुन को अपने प्रसिद्ध धनुष की ही याद आयी जिसको वह अपने लिए सहायता की सर्वोत्तम वस्तु समझे हुये था। धनुष तो वैसा का वैसा ही है परन्तु मोह द्वारा मन के भ्रमित हो जाने के कारण वह अपने मे उसे उपयोग की सामर्थ्य नहीं पा रहा है। ऐसी दशा में दिखाया गया है कि समुचित साधन होते हुए भी मनुष्य मोह द्वारा भ्रमित मन हो जाने के कारण अपने साधनों का उचित उपयोग भी नहीं कर पाता है। युद्ध में एकत्रित लोगों को स्वजन-समुदाय की संज्ञा देकर अर्जुन उन्हें मारने में अपना कल्याण भी नहीं देखता। यद्यपि उसी क्षुद्र अहंकार के कारण अर्जुन अब सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी करता है कि लक्षण भी विपरीत है और स्वजन-समुदाय को मारने में कल्याण भी नहीं होता। यहाँ पर शरीर के सम्बन्धों को आत्मा का सम्बन्ध मान लेने

के कारण ही यह मोह उत्पन्न हुआ है।''[15] ''मोह से उत्पन्न विषाद ने उसे भ्रमित कर दिया और उसके मन में मिथ्या वैराग्य जागने लगा। शोक और निराशा के क्षणों में मनुष्य संसार के सुखों को ही नहीं, बल्कि जीवन को भी निस्सार एवं निरर्थक समझने लगता है।''[16] मोहग्रस्त अर्जुन असहाय स्थिति में आ जाते हैं। वे कहते हैं कि 'मैं युद्ध करूँ अथवा न करूँ इन बातों का निर्णय मैं नहीं कर रहा हूँ। कारण कि आपकी दृष्टि में तो युद्ध करना ही श्रेष्ठ हैं, पर मेरी दृष्टि में गुरुजनो को मारना पाप होने के कारण, युद्ध न करना ही श्रेष्ठ है। इन दोनों पक्षों को सामने रखाने पर मेरे लिए कौन सा पक्ष अत्यन्त श्रेष्ठ है- यह मैं नहीं जान पा रहा हूँ।[17]

अर्जुन मोहग्रस्त है। उसके मोह का कारण नि:सन्देह धर्म है। वे कायरता के कारण युद्ध से विमुख नहीं हो रहे हैं। वरन धर्म को ही देखकर युद्ध से विमुख हो रहे हैं, उसका अपने गुरुजनों के प्रति श्रद्धाभाव है उसका सोचना है- ''मैं कायरता के कारण युद्ध से विमुख नहीं हो रहा हूँ। प्रत्युत् धर्म को देखकर युद्ध से विमुख हो रहा हूँ, परन्तु आप कह रहे हैं कि यह कायरता, यह नपुंसकता तुम्हारे में कहाँ से आ गयी! आप जरा सोंचें कि मैं पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण के साथ बाणों से युद्ध कैसे करूँ? महाराज! यह मेरी कायरता नहीं है। कायरता तो तब कही जाय, जब मैं मरने से डरूँ। मैं मरने से नहीं डर रहा हूँ, प्रत्युत् मारने से डर रहा हूँ।''[18] अर्जुन का भीष्म, द्रोण आदि से संबध जन्म और विद्या अध्ययन के कारण है। ''शास्त्रों में मनुष्य के जो जन्म बताए गयें हैं, एक तो माता-पिता से उसके शरीर का जन्म होता है और दूसरा जन्म आचार्य से शिक्षा ग्रहण करके उसकी आत्मा का होता है। यहाँ अर्जुन भीष्मपितामह का नाम लेकर कहता है कि 'जिन पूर्वजों की कृपा से मुझे शरीर प्राप्त हुआ है और जिन आचार्य द्रोण की शिक्षा से मेरी आत्मा का विकास हुआ है उन दोनों के सामने मैं बाणों से युद्ध कैसे कर सकता हूँ। वे दोनों तो पूजा के योग्य हैं।''[19] अर्जुन के मन में यह विचार आ रहा है कि ''भीष्म, द्रोण आदि गुरुजनों को मारूंगा, जो धर्मयुक्त नहीं है। वे मेरे पर बड़ा ही प्यार, स्नेह रखते हैं। विद्या के सम्बन्ध से आचार्य द्रोण हमारे पूज्यनीय हैं। वे मेरे विद्यागुरू हैं। उनका मुझ पर इतना स्नेह है कि उन्होनें, अपने पुत्र अश्वत्थामा को भी मेरे समान नहीं पढ़ाया। उन्होनें ब्रह्मशस्त्र को चलाना तो दोनों को सिखाया, पर ब्रह्मशस्त्र का उपसंहार करना मुझे ही सिखाया, अपने पुत्र को नहीं। उन्होनें मुझे यह वरदान भी दिया है कि 'मेरे शिष्यों में, अस्त्र-शस्त्र कला में, तुमसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं होगा।' पूजनीय पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण के ही सामने तो वाणी से 'रे' 'तू'-ऐसा कहना भी उनकी हत्या करने के समान पाप है, फिर मारने की इच्छा से उनके बाणों से युद्ध करना कितने भारी पाप की बात है।''[20] अर्जुन के मन में भाव यह है कि 'युद्ध में अपने सगे सम्बन्धियों के मारने से किसी प्रकार का भी हित होने की सम्भावना नहीं है' क्योंकि प्रथम तो आत्मीय स्वजनों के मारने से चित्त में पश्चातापजनित क्षोभ होगा, दूसरे उनके अभाव में जीवन दु:खमय हो जायेगा और तीसरे उनके मारने से महान् पाप होगा। इन दृष्टियों से न इस लोक में हित होगा और न परलोक में ही। अतएव मेरे विचार से युद्ध करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है।'[21]

अर्जुन मोह में सत्य और निष्ठा-

''श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम अध्याय में अर्जुन की ओर से पाँच मुख्य प्रश्न उठाए गए हैं। प्रथम बात तो यह है कि युद्धभूमि में प्रवेश करते समय उसके हृदय में अहंकार का भाव उदय हुआ था जिसके कारण वह युद्ध में अनुपम वीरता दिखाने के लिए उद्यत हो गया था। स्वजनों को देखते ही शरीर के अन्दर उसने सामर्थ्य और उन सारे वीर भावों को तिरोहित होते हुए अनुभव किया। दूसरी शंका यह थी कि अपशकुनों के कारण उसे युद्ध के परिणाम पर सन्देह हो गया और तीसरी बात यह है कि अपने सगे सम्बन्धियों को मारने में उसने अपने श्रेय की हानि समझी। चौथी शंका यह है कि उसने कुल का नाश करने पर अधर्म की वृद्धि देखी और उसके मन में यह घोर संदेह उठ खड़ा हुआ कि युद्ध में जीत हो भी जाये, तो उससे अधर्म ही बढ़ेगा, फिर उससे क्या लाभ होगा। पाँचवी शंका यह है कि कुल के नाश हो जाने से कुलधर्म लोप हो जायेगा और कुलधर्म के नाश से वर्ण-संकरता की वृद्धि होगी जिससे लोग अपने कर्त्तव्यों से च्युत् हो जायेंगे। इसके कारण सबको असंख्य जन्मों तक नरक का दु:ख भोगना पड़ेगा।''[22] इस प्रकार अर्जुन रणक्षेत्र में खड़ी हुई सेना के मध्य स्थिति में आकर युद्ध करने के कर्त्तव्य से मुकर रहा है और अपने लिए धर्म और पाप की दुहाई दे रहा है, एक ओर अर्जुन प्रौढ़ ज्ञानियों की भाँति श्रेय और प्रेय की बातें कर रहा है तथा दूसरी ओर मोह से उत्पन्न मानसिक दुर्बलता के कारण वह अपशकुनों की ओर देख रहा है। दुर्बल लोग शकुनों से और कर्मयोगी कर्त्तव्य निष्ठा से प्रेरणा लेते हैं।[23] कृष्ण इस बात को भली-भाँति समझते है। इसलिए अपने सन्देश में भगवान् ने अर्जुन के कल्याण की दृष्टि से ही उन्हें कायरता को छोड़कर युद्ध के लिये खड़े होने की आज्ञा दी थी। परन्तु प्रथमदृष्ट्या अर्जुन उलटा ही समझे अर्थात वे समझे कि भगवान् राज्य का भोग करने की दृष्टि से ही युद्ध की आज्ञा देते है। पहले तो अर्जुन का युद्ध न करने का एक ही पक्ष था, जिसे वे धनुष बाण छोड़कर और शोकाविष्ट होकर रथ के मध्यभाग में बैठ गये थे।[24] परन्तु युद्ध करने का पक्ष तो भगवान् के कहने से ही हुआ तात्पर्य है कि अर्जुन का भाव था कि हम लोग तो धर्म को जानते हैं, पर दुर्योधन आदि धर्म को नहीं जानते, इसलिए वे धन, राज्य आदि के लोभ से युद्ध करने को तैयार खड़े हैं। अब वही बात अर्जुन यहाँ अपने लिए कहते हैं कि अगर मैं

भी आपकी आज्ञा के अनुसार युद्ध करूँ, तो परिणाम में गुरुजनों के रक्त से सने हुए धन, राज्य आदि को ही तो प्राप्त करूँगा इस तरह अर्जुन को युद्ध करने में बुराई ही बुराई दिखाई दे रही है।

जो बुराई-बुराई के रूप में आती है, उसको मिटाना बड़ा सुगम होता हैं। परन्तु जो बुराई अच्छाई के रूप में आती है, उसको मिटाना बड़ा कठिन होता है। जैसे- सीता जी के सामने रावण और हनुमान जी के सामने कालनेमि राक्षस आये तो उनको सीता जी और हनुमान जी पहचान नहीं सके। क्योंकि उन दोनों का वेश साधुओं का था। अर्जुन की मान्यता में युद्ध रूप कर्त्तव्य-कर्म करना बुराई है और युद्ध न करना भलाई है अर्थात् अर्जुन के मन में धर्म (हिंसा-त्याग) रूप भलाई के वेश में, कर्त्तव्य त्याग रूप बुराई आयी है। उनको कर्त्तव्य त्याग रूप बुराई के रूप में, नहीं दिख रही है, क्योंकि उनके भीतर शरीरों को लेकर मोह है।[25] इस मोहग्रस्तता के कारण ही अर्जुन कर्त्तव्यच्युत होने को अग्रसर है। दूसरे ''विषम परिस्थितियों में विचलित हो उठना जीवन की सहज प्रवृत्ति है। सर्वनियन्ता परमशक्ति के अवतार परमात्मा श्रीकृष्ण के साथ रहने पर भी कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन को मोह हो गया। वह संशयग्रस्त हो गया कि हम शत्रुओं को जीते या क्या पता शत्रु हमें जीतें 'युद्ध जयेम युद्ध नो जयेयु:' किन्तु इसी मध्य निराशा के घटाटोप में आस्था की बिजली चमकी और अर्जुन को बोध हुआ कि वह भटक गया है। उसकी डगमगाती आस्तिकता और आस्था सँभली और उसने अन्तर्यामी कृष्ण की शरण ली-

'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'

अर्थात् मैं शिष्य शरणागत हूँ, मेरा पथ प्रदर्शन कीजिए। विषादग्रस्त अर्जुन ने आस्तिकता और आस्था की अंगुली पकड़कर अपने आगन्तुक विषम विषाद को गीताज्ञान का हेतु बना लिया और महाभारत के भयंकर संग्राम में विजय प्राप्त की।''[26] शत्रु हमें जीते। ''वास्तव में यह अर्जुन की करुणा नहीं थी, विवेक रहित क्षणिक भावुकता थी। अर्जुन अनेक बड़े युद्ध कर चुका था और उसके मन में कभी दयार्द्रता न आयी थी, किन्तु यह स्वजनों के साथ युद्ध था, अतएव उसके मन में मोह के कारण अपरिसीम करुणा के रूप में विवेकरहित भावुकता जाग गयी थी। उसका व्यवहार भावुकतापूर्ण था, वीरोचित नहीं। सहृदय एवं सरल मनुष्य प्राय: भावुकता के प्रवाह में बह जाते हैं तथा विवेक ही उन्हें भावुकता के भँवर से पार करता है। विवेक का अर्थ होता है उचित दिशा में विचार करना, मोहादि से ऊपर उठकर कर्तव्य का निश्चय करना।''[27] भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन के व्यक्तित्त्व की विराटता से परिचित हैं किन्तु मोहवश कर्त्तव्य विमुख होने पर वे अर्जुन के विवेक बुद्धि को सचेत करते हैं।

युद्ध के मैदान में मोहग्रस्त अर्जुन को भगवान् उनके स्वजनों के बीच ले जाकर खड़ा करते हैं और कहते हैं कि ले इन्हें देख। भगवान् के इसी संकेत ने अर्जुन के अन्त:करण में छिपे हुए कुटुम्ब मोह को प्रकट कर दिया। श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम अध्याय के 25वें श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने 'कुरून पश्य' अर्थात् 'कौरवों को देखों' इन शब्दों का प्रयोग करके भगवान ने यह भाव भी दिखलाया है कि 'इस सेना में जितने लोग हैं, प्राय: सभी तुम्हारे वंश के तथा आत्मीय स्वजन ही हैं। उनको तुम अच्छी तरह देख लो।' भगवान् के इसी संकेत ने अर्जुन के अन्त:करण में छिपे हुए कुटुम्बस्नेह को प्रकट कर दिया। अर्जुन के मन में बन्धु स्नेह से उत्पन्न करुणा-जनित कायरता प्रकट करने के लिए ये शब्द मानो बीजरूप हो गये। मालूम होता है कि अर्जुन को निमित्त बनाकर लोककल्याण करने के लिए स्वयं भगवान् ही इन शब्दों के द्वारा उनके हृदय में ऐसी भावना उत्पन्न कर दी, जिससे उन्होंने युद्ध करने से इन्कार कर दिया और उसके फलस्वरूप साक्षात् भगवान् के मुखारबिन्दु से त्रिलोकपावन दिव्य गीतामृत की ऐसी परम् मधुर धारा बह निकली, जो अनन्त कालतक अनन्त जीवों का परम् कल्याण करती रहेगी।[28] अर्जुन मोहग्रस्त है, मोह के वश में मनुष्य अधर्म को धर्म मानता है। मोह के कारण अर्जुन ने अपना और पराया भेद किया, इस भेद को मिथ्या बतलाते हुए श्रीकृष्ण, देह और आत्मा की भिन्नता, देह की अनित्यता और पृथकता तथा आत्मा की नित्यता और उसकी एकता बतलाते हैं। मनुष्य केवल पुरुषार्थ (कर्त्तव्य कर्म) का अधिकारी है, परिणाम का नहीं। इसलिए उसे कर्तव्य का निश्चय करके निश्चिय भाव से उसमें लगे रहना चाहिए। ऐसी परायणता से वह मोक्ष की प्राप्ति को पहुँच सकता है।[29] ''प्रत्येक व्यक्ति विषाद को, प्रतिकूल परिस्थितियों को चाहे तो कल्याण का सोपान बना सकता है। आवश्यकता है आस्था की, आस्तिकता की और अपने अहं को ईश्वरार्पित करने की; फिर दैवसंदेश, दैवी सहायता उसे भी वैसे ही मिलेगी, जैसे अर्जुन को मिली थी।''[30]

अर्जुन समाज की आवश्यकता-

मोह से ग्रस्त मनुष्य आज अपने कर्त्तव्य कर्म से च्युत है मोह पाश में फँसकर सभी अपने हथियार डाल चुके हैं। अन्याय को सहने की मानसिकता में आज सभी हैं। समाज में आज अत्याचार, कदाचार और आतंकवाद बढ़ रहा है, इन्हें वह सुरसा के मुह की तरह बड़ा होकर सम्पूर्ण मानवता को निगल जाना चाहता है। आज व्यक्ति स्वकेन्द्रित होकर अपने धर्म को त्याग चुका है। उसे मोह में अत्याचारी, आतंकवादी, आदि अपने ही दिखाई देते हैं और उन्हे वह शरण देता है। वह इस मोह पाश में पूर्णत: आबद्ध है। कारण, आज का आततायी व्यक्ति कहीं समाज के बाहर का व्यक्ति नहीं है बल्कि वह इसी समाज में ससम्मान रह रहा है। उसे सहयोग करने वाले बहुत हैं- अपने के नाम पर, और इस अत्याचार को सहन करने वाले भी आज बहुत हैं। कोई भी अन्याय

के विरुद्ध लड़ना नहीं चाहता। सभी चाहते हैं कि भगत सिंह और सुभाषचन्द्र बोस आज पैदा हों लेकिन अपने घर में नहीं पड़ोस में। फिर इसका समाधान कैसे हो। जब तक कोई इस अन्याय का प्रतिकार करने के लिए आगे नहीं बढ़ता, इस तरह समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। आज के इस अंधकार युग में जब चारों तरफ महाभारत छिडी़ हो, अर्जुन जैसे नेतृत्व कर्ताओं की महती आवश्यकता है जो अन्याय उन्मूलन के निमित्त कारण बन सके। प्रतिभाशाली एवं शक्तिशाली लोगों की कमी नहीं है। आज अपने क्षेत्रों के सांसारिक धनुर्धर बहुत हैं लेकिन इस अन्याय के प्रतिकार के लिए कोई आगे नहीं बढ़ता। महाभारत काल में भी स्थिति ऐसी ही रही होगी। वहाँ भी अच्छे लोग थे। अन्याय का प्रतिकार करने वाले भी थे। अर्जुन में यह पात्रता रही है। समस्या केवल मोह से मुक्त होने की थी। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण तब तक कुछ नहीं कहते जब तक कि अर्जुन अपनी पात्रता सिद्ध नहीं कर देते। श्रीकृष्ण गीता के दूसरे अध्याय में ही बोलते हैं जब अर्जुन शरण ागत होकर शोक का एकान्तिक उपाय पूछते हैं।

आज प्रतिभाशाली और प्रवीण लोग बहुत हैं लेकिन अर्जुन जैसे प्रतिभावान लोग कम हैं। जो प्रतिपल अवसर में भी अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं होते हैं। आज के समाज में संत की आवश्यकता नहीं है। वे बहुत हैं और दिव्यदृष्टि रूपी ज्ञान प्राप्त कर वे निश्चेष्ट पड़े हैं। इससे समाज का हित साधन नहीं होगा, इसलिए आज अर्जुन जैसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो दुष्टों के संहार के निमित्त बन सके। ''अर्जुन श्रीकृष्ण के परमप्रिय हैं, भगवान् चाहें तो उसे माया से मुक्त कर सिद्ध संतों की श्रेणी में लाकर स्थायी रूप से दिव्य दृष्टि दे सकते थे। लेकिन स्थायी रूप से दिव्य मिल जाने पर अर्जुन सिद्ध बन जायगा और वह युद्ध नहीं करेगा, अत: जिस प्रयोजन से भगवान् ने अवतार लिया है, अर्जुन को माध्यम बनाकर कौरव आदि जिन अत्याचारी राजाओं के अत्याचार से जनता को मुक्त करना है, पृथ्वी के भार को कम करना है- वह उद्देश्य सिद्ध न हो सकेगा। अत: भगवान् ने अर्जुन को केवल क्षण मात्र की दिव्य दृष्टि दी, जिससे अपने प्रति अर्जुन को पूरा विश्वास हो जाय।''[31]

कृष्ण एक उपदेशपरक व्यक्तित्त्व के रूप में-

''कृष्ण एक कुशल राजनीतिज्ञ के साथ ही योगेश्वर और महान् धर्म- प्रवर्तक थे। उन्होनें कर्म के क्षेत्र को संस्कारित किया और सकाम कर्म के स्थान पर निष्काम कर्मयोग की नींव रखी। परस्पर विरोधी माने जाने वाले ज्ञान और कर्म का समन्वय किया तथा धर्म के रसात्मक रूप भक्ति का उससे मेल कराया।''[32] श्रीकृष्ण धर्म और राजनीति के शाश्वत मूल्यों का संवहन करने वाले तर्क पर तराशे नीति-नियामक आप्तवाक्य बोलते हैं, समाज-सापेक्ष कर्मयोग का आध्यात्मिक दर्शन प्रस्तुत करते हैं और हिंसा-अहिंसा, पाप, पुण्य विषयक धार्मिक अंधविश्वास में उलझे भारतीय मानस को उबारने के लिए क्षेमकारी एवं व्यावहारिक दर्शन प्रस्तुत करते हैं। उन्होनें स्पष्ट किया कि यदि युग-मानस, इन भ्रान्तियों मे उलझा रहा तो जीवन के महाभारत में रावण, कंस, दुर्योधन, शिशुपाल जैसे लोक एवं धर्म विरोधी दुष्टात्माओं को कभी भी मारा नहीं जा सकेगा। इस लड़ाई को लंका से लेकर कुरुक्षेत्र तक ले जाना ही पड़ेगा। युगशक्ति बनाकर महाभारत की चौखट तक लाये गये अर्जुन को पाप-पुण्य के झमेले युद्ध से विरत कर अकर्मण्यता की जिस वन्या में ले जा रहे थे, उसे ज्ञानगीता का पाठ पढ़ाकर कृष्ण सच्चे कर्मवीर का व्यक्तित्व न प्रदान करते तो नीति-अनीति, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय के मध्य होने वाले संघर्ष की दशा में राष्ट्र को सही दिशा कैसे मिलती? कृष्ण तो अकेले ही युद्ध जीत सकते थे, परन्तु वे चाहते थे कि न्याय संगत अधिकार की लड़ाई के लिए वह पक्ष (पीड़ित पक्ष) भी सामने आये जिसका अन्यायपूर्वक हक छीना गया हो। वे अर्जुन के मित्र हैं, उनके रथ-सारथी हैं, परन्तु संशयग्रस्त होने पर उन्हें अपने गुरुत्व का भान कराते हैं, गीता का अमर ज्ञान कराते हैं, अपने विराट् स्वरूप का दर्शन कराकर उन्हें मोह से उबारते हैं, युद्ध में नियोजित करते हैं और युग एवं धर्म की दिशा निर्धारित करते हैं।[33] इस प्रतिभा के बल पर वे अर्जुन के लिए कुशल मार्ग दर्शक एवं उपदेशक सिद्ध हुए।

श्रीकृष्ण का उपदेशक व्यक्तित्व अत्यंत विराट है और शैक्षिक जगत के लिए शिक्षक का आदर्श प्रस्तुत करता है। भगवान श्रीकृष्ण एक कुशल उपदेशक हैं। कुशल उपदेशक का एक सर्वप्रमुख गुण है कि देश, काल, परिस्थिति की मार्मिकता को भली-भाँति पहचान सके और उपदेश प्राप्तकर्त्ता शिष्य के मन में उपदेश ग्रहण की पात्रता को जाग्रत कर ही उपदेश करे। जब वह अपने शिष्य के भीतर उपदेश ग्रहण की पात्रता के प्रति पूर्ण आश्वस्त हो जाय तभी उपदेश दे। यही सच्चे मार्गदर्शक का गुण है। श्रीकृष्ण एक कुशल उपदेशक एवं सच्चे मार्ग दर्शक हैं। ''श्रीकृष्ण और अर्जुन चिरकाल से परस्पर मित्र थे। श्रीकृष्ण ने उसके साथ ऐसे गूढ़ संवाद के लिए रण-स्थल को ही क्यों चुना? वे उसे कभी पहले भी यह सब समझा सकते थे। वास्तव में मनुष्य किसी उपदेश को तभी अंगीकार करता है, जब वह अभी मन:स्थिति के द्वारा ग्रहणशील होकर उसके लिए तैयार हो जाता है तथा दूसरे की बात सुनने, समझने और अपनाने के मनोभाव में होता है। श्रीकृष्ण तो इस अवसर की प्रतीक्षा में थे ही, किन्तु जब अर्जुन भ्रान्त होकर अपने भीतर ही विषाद के काले अँधियारे में डूबकर व्याकुल हो उठा, उसके हाथ से धनुष गिरने लगा और वह जल से बाहर निकली हुई मछली की भाँति तड़पने और फड़कने लगा, झंझावात मे आँधी के झोंके से गिरते हुए वृक्ष

की भाँति कम्पायमान होकर डगमगाने लगा तथा भीतर-ही भीतर हार मानकर, किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर दयनीय दशा में कहने लगा, ''हाय! क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?'' उसने श्रीकृष्ण से सँभालने, दिशा देने और उसे भीतरी व्याकुलता से बचाने के लिए प्रार्थना की, भीख माँगी और मित्रता छोड़कर शिष्यता ग्रहण कर ली। वह कहने लगा, ''हे कृष्ण! आप जैसा कहेगें, मैं करूँगा। मेरी भीतर के भावोद्रेक से मेरी रक्षा कीजिए, मैं आपकी शरण ग्रहण कर रहा हूँ।'' श्रीकृष्ण अर्जुन की ग्रहणशीलता के इसी क्षण की प्रतीक्षा में थे। उन्होने हँसकर संकेत किया कि वह प्रकाश देकर उसको मानसिक व्यग्रता की स्थिति से बचा लेंगे, जो उसे दीन और कायर बना रही थी तथा उसके भीतर अपरिसीम आत्मग्लानि भर रही थी। पूर्णत: भ्रान्त होकर भी अर्जुन जब प्रज्ञावान् की भाँति कुछ कहने लगा, श्रीकृष्ण ने उसके मिथ्या अहंकार पर प्रहार करते हुए उसे उसकी अज्ञता तथा निस्सार प्रज्ञावाद पर डाँटा, जिसे वह अन्यथा कदापि सहन न करता।

श्रीकृष्ण ने उसे उपदेश ही नहीं, आदेश भी दिये, क्योंकि शिष्य को परिपक्व करने के लिए उपदेश और आदेश देने का यही समुचित अवसर था। मनीषियों द्वारा अज्ञ पुरुष की अबोधता दूर करने के लिए, उसे मार्ग दिखाने के लिए उपदेश दिया जाता है तथा भटकते हुए और हठी व्यक्ति को आदेश दिया जाता है। योगिराज श्रीकृष्ण के लिए यहाँ कोई बड़ी बात न थी कि रणभूमि मे कालगति अथवा काल व्यतीत होने के तथ्य का आभास किसी को न हो। वास्तव मे संपूर्ण गीता-संवाद अत्यन्त अल्प अवधि मे ही समाप्त हो गया। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सूक्ष्म तत्त्व को तत्काल ग्रहण करने वाली प्रज्ञा के महोच्च शिखर पर स्थित करके तत्त्वाधान दिया जो कदाचित् सूत्रात्मक था तथा व्यासजी ने दिव्य भाव में स्थिति होकर उसे काव्यरूप में प्रस्तुत कर दिया। यह महत्त्वपूर्ण है कि यद्यपि महाभारत में श्रीकृष्ण और अर्जुन के अनेक नाम हैं, पर भगवद्गीता में केवल 'श्रीभगवान् उवाच' तथा 'अर्जुन उवाच' है। यह भी स्मरणीय है कि महाभारत के पश्चात् पुन: गीतोपदेश करने के अर्जुन के निवेदन को श्रीकृष्ण ने स्वीकार नहीं किया। बहुत कुछ समझाने के बाद श्रीकृष्ण ने अर्जुन को पूर्णत: आश्वस्त करने के लिए दिव्यचक्षु अथवा दिव्यशक्ति देकर अपने विराट् रूप का ऐश्वर्य दिखा दिया।''[34] इस प्रकार गीता में शैक्षिक मार्गदर्शन का आर्दश सान्निहित है इस को ध्यान में रखकर हमारे समाज के गुरुजन अपने शिष्यों के मार्गदर्शन के उद्देश्य में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकते हैं। एक सार्थक उपदेशकर्त्ता वही हो सकता है जिसमें नेतृत्व करने का कौशल हो। श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व में अद्भुत नेतृत्व कौशल है। वे सबको एक साथ लेकर चलने एवं सबकी योग्यता-क्षमता के अनुरूप उसे कार्य लेने में सक्षम हैं। उन्हें पाण्डवों की सीमा एवं क्षमता का पूर्णज्ञान हैं। युद्ध के परिणाम के प्रति आशंकित अर्जुन के मन से वे संशय एवं भय का पूर्ण समाहार कर देते हैं। वे यहाँ तक कह देते हैं कि ''अर्जुन युद्ध भी मैं ही करूँगा। ये सभी मेरे द्वारा मारे जाऐंगे, तुम केवल निमित्त मात्र बन जाओगे।'' उद्देश्य एवं लक्ष्य की स्पष्टता किसी नेतृत्वकर्त्ता की अनिवार्य शर्त है। कृष्ण प्रवचन कर्त्ता नहीं अपितु उपदेशक है और वह भी एक मनोवैज्ञानिक उपदेशक-उससे भी बड़े नेतृत्वकर्त्ता मार्गदर्शक भी। ''अर्जुन श्रीकृष्ण के परमप्रिय हैं, भगवान् चाहें तो उसे माया से मुक्त कर सिद्ध संतों की श्रेणी में लाकर स्थायी रूप से दिव्य दृष्टि दे सकते थे। लेकिन स्थायी रूप से दिव्य दृष्टि मिल जाने पर अर्जुन सिद्ध बन जायेगा और वह युद्ध नहीं करेगा, अत: जिस प्रयोजन से भगवान् ने अवतार लिया है, अर्जुन को माध्यम बनाकर कौरव आदि जिन अत्याचारी राजाओं के अत्याचार से जनता को मुक्त करना है; पृथ्वी के भार को कम करना है- वह उद्देश्य सिद्ध न हो सकेगा। अत: भगवान् ने अर्जुन को केवल क्षण मात्र की दिव्य दृष्टि दी, जिससे अपने प्रति अर्जुन को पूरा विश्वास हो जाय।''[35] मन, बुद्धि, अहंकार, एवं इन्द्रियों पर विजय, पूर्ण शुद्ध-प्रबुद्ध व्यक्तित्व, अपने उपदेश से कर्त्तव्य मार्ग से भटके लोगों को सच्ची राह दिखा सकता है। एक उपदेशक के लिए अपने उपदिष्ट पात्र से परम् आत्मीयता की पूर्वापेक्षा होती है। कृष्ण अर्जुन को अनेक सम्बोधनों से पुकारते हुए बड़े प्यार से जगाते हैं। अर्जुन को कब किस सम्बोधन से पुकारना हैं कृष्ण उसे भली-भाँति जानते हैं। इस कारण वे प्रवीण मानोविज्ञानी हैं। उनका मनोविज्ञान सम्मत उपदेश कौशल अर्जुन को कार्यरत बनाने में सफल रहता है। आत्मीय वचन के साथ उनका उपदेश अर्जुन पर बड़ा प्रभावी रहता है। पृथा के पुत्र होने से अर्जुन का एक नाम 'पार्थ' भी है। पार्थ सम्बोधन भगवान् की अर्जुन के साथ प्रियता और घनिष्ठता का द्योतक है। गीता में भगवान् ने अड़तीस बार 'पार्थ' सम्बोधन प्रयोग किया है। अर्जुन के अन्य सभी सम्बोध नों की अपेक्षा 'पार्थ' सम्बोधन का प्रयोग अधिक हुआ है। इसके बाद सबसे अधिक प्रयोग 'कौन्तेय' सम्बोधन का हुआ है, जिसकी आवृति कुल चौबीस बार हुई है।

भगवान् को अर्जुन से जब कोई विशेष बात कहनी होती है या कोई आश्वासन देना होता है या उनके प्रति भगवान् का प्रेम विशेषरूप से उमड़ता है, तब भगवान् उन्हें 'पार्थ' कहकर पुकारते हैं। इस सम्बोधन के प्रयोग से मानों वे स्मरण कराते हैं। विशेष रूप से प्रेम उमड़ता है, तब भगवान उन्हें 'पार्थ' कहकर पुकारते हैं। इस सम्बोधन के प्रयोग से मानो वे स्मरण कराते हैं कि तुम मेरी बुआ (पृथा कुन्ती) के लड़के तो हो ही, साथ-ही-साथ मेरे प्यारे भक्त और सखा भी हो।[36] अत: मैं तुम्हें विशेष गोपनीय बातें बताता हूँ और जो कुछ भी कहता हूँ, सत्य तथा केवल तुम्हारे हित के लिये कहता हूँ।[37] कृष्ण अर्जुन को यह बताते है कि क्षत्रिय

कर्म क्या है।

गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं- 'जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ अथवा अशुभ वस्तु को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है तो फिर भगवान् का अर्जुन के प्रति इतनी आत्मीयता प्रदर्शन क्यों। वस्तुत: श्रीकृष्ण का यह उपदेशक व्यक्तित्त्व है जो अर्जुन के प्रबोधन के लिए अनिवार्य है। किन्तु इस आत्मीयता के बावजूद कहीं से भी कृष्ण के कथन में पक्षपात नहीं दिखाई देता है।

किसी की यह अत्युक्ति कि कृष्ण ने अपने बुद्धिचातुर्य का प्रयोग करके महाभारत जैसा विनाशकारी युद्ध करा दिया, वस्तुत: यह सर्वथा अप्रासंगिक है। कृष्ण का उपदेश कहीं से भी विनाश करने का नहीं हैं। श्रीकृष्ण तो कहते है कि जब-जब ध र्म की हानि होती है तो मैं दुष्टों के संहार के लिए एवं भक्तों के सहयोग के लिए अवतार लेता हूँ।[38] दूसरे भगवान् ने अर्जुन से युद्ध नहीं कराया प्रत्युत् उनके अपने कर्त्तव्य का ज्ञान कराया है। युद्ध तो अर्जुन को कर्त्तव्य रूप में स्वत: प्राप्त हुआ था। अत: युद्ध का विचार तो अर्जुन का खुद का ही था, वे स्वयं ही युद्ध में प्रवृत्त हुए थे, तभी वे भगवान् को निमन्त्रण देकर लाये थे। परन्तु उस विचार को अपनी बुद्धि से अनिष्टकारक समझकर वे युद्ध से विमुख हो रहे थे अर्थात् अपने कर्त्तव्य के पालन से हट रहे थे। इस पर भगवान् ने कहा कि 'यह जो तू युद्ध नहीं करना चाहता, यह तेरा मोह है। अत: समय पर जो कर्त्तव्य स्वत: प्राप्त हुआ है, उसका त्याग करना उचित नहीं है।'[39] कृष्ण का यही संदेश है।

कुशल उपदेशकर्त्ता सर्वप्रथम उपदिष्ट पात्र के कमजोर बिन्दुओं पर सतर्क आघात करता है इसके लिए वह उस पात्र की सुषुप्त शक्तियों को जाग्रत करने का उपक्रम करता है। अर्जुन मोहपाश में आबद्ध है और वह प्रबुद्ध एवं कर्मयोगी हैं। भगवान् कृष्ण इस बात को भली-भाँति समझते हैं। अतएव इसके लिए उन्होनें अर्जुन को प्रथमत: तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया और फिर उसे युद्ध का निमित्त पात्र बनने का उपदेश दिया। कृष्ण इस बात की उपयुक्तता समझते हैं। मोहांधकार को केवल ज्ञान से ही दूर किया जा सकता है। ''श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सर्वप्रथम सांख्य का उपदेश दिया तथा उसके मोहबन्धन पर प्रहार किया- 'अरे, शरीर तो आत्मा का वस्त्र है, जो जीर्ण होने पर त्याग दिया जाता है। वास्तव में, शरीर जीवात्मा का वाहन है, जो उसे परमात्मा तक पहुँचा सकता है। आत्मा नित्य है और देह नश्वर है। प्रश्न है- मैं कौन हूँ? तत्त्वज्ञान होने पर बुद्धि द्वारा निश्चय होता है कि मैं आत्मा हूँ तथा नाम एवं रूपवाला देह नहीं हूँ। आत्मा परमात्मा का अभिन्न अंश है तथा सत् है। सारी भौतिक सृष्टि (देह भी) नश्वर है, असत् है अथवा मिथ्या है। देह बुद्धि के कारण (अर्थात् अपने को देह मानकर) मनुष्य कुछ व्यक्तियों और वस्तुओं को स्वार्थवश अपना मान लेता है तथा उनसे मोह करता है। सारी सृष्टि को तथा समस्त प्राणियों को प्रभु का मानते हुए अपना मानना अथवा सबमें प्रभु का दर्शन करना ज्ञान है, किन्तु देह के कारण संकीर्णता से बँधना अथवा मोहग्रस्त होना अज्ञान है। दृष्टि के व्यापक होने पर सात्त्विकता (शुद्ध प्रेम) का आविर्भाव होता है तथा संकीर्ण होने पर मोह का। ज्ञानी सभी को अपना स्वरूप मानकर प्रेम करता है तथा कुटुम्ब के प्रति प्रेमपूर्वक दायित्व का निर्वाह करता है मोह की संकीर्णता में फँसकर मनुष्य किसी को पराया मानकर शोषण करता है और किसी को अपना मानकर उसके लिए धन-सम्पत्ति का संचय करता है।''[40] इससे मनुष्य कर्म बन्धन का शिकार हो जाता है और वह जाने-अनजाने पापकर्म करने लगता है। इसलिए कर्म-विमुख अर्जुन को सर्वप्रथम कृष्ण ने मोहग्रस्तता से मुक्ति दिलाने का प्रयत्न किया।

कृष्ण अर्जुन की कमजोरी (मोह ग्रस्तता) पर आघात करते समय अत्यंत सचेत हैं। ''वे जानते है कि अर्जुन शूर-वीर, क्षणिक आवेश में आकर धनुष फेंक रहा है, किन्तु भविष्य में जब लोग उसकी निन्दा करेंगे और उसे कायर कहेंगे तो उसे पश्चात्ताप होगा और वह क्लेश में डूबकर व्याकुल हो जायगा। अवसर पर चूकने वाले लोग बाद में सदा पछताया करते हैं, किन्तु अवसर बीतने पर पछताने से क्या होता है?

वास्तव में, श्रीकृष्ण अर्जुन को निन्दा का भय नहीं दिखा रहें है, किन्तु उसे यह स्पष्ट कर रहे हैं कि उचित निन्दा पर ध्यान देकर सँभलना विवेक होता है। मनुष्य को सत्कर्म करते हुए निन्दा-स्तुति से प्रभावित नहीं होना चाहिए, किन्तु यदि निन्दा सार्थक और उचित हो तो उसे सुनकर आत्मसुधार अवश्य करना चाहिए तथा निन्दनीय कर्म नहीं करना चाहिए। कर्त्तव्य पालन न करने की निन्दा तो आँखें खोलने वाली होती हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन को धर्मयुद्ध से पलायन की यथार्थ निन्दा के प्रति जागरूक कर रहे हैं तथा उसे चेतावनी दे रहे है कि अपयश का काम करने पर जब उसे अपयश मिलेगा तो वह बहुत दु:खी होगा। वीर पुरुष की यह प्रकृति होती है कि वह सब निन्दा नहीं सह सकता। श्रीकृष्ण युक्तिपूर्वक उसका शौर्यभाव जगा रहे हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन को प्रत्येक अवस्था में स्वधर्म-पालन करने के लिए अनेक युक्तियों द्वारा प्रेरित एवं प्रवृत्त कर रहे हैं तथा लौकिक दृष्टि से भी स्वध र्म-पालन के लाभ बता रहे हैं।''[41] श्रीकृष्ण के उपदेश कौशल की यह तकनीक उन्हें कार्यरत कराने में पूर्ण सफल रहती है।

कृष्ण का विराट रूप दर्शन-

श्रीमद्भगवद्गीता के 11वें अध्याय में अर्जुन के प्रार्थना करने पर भगवान् ने उनको विश्वरूप के दर्शन कराए हैं। इस अध्याय के प्रारम्भ में अर्जुन कहते हैं - हे भगवान्! मुझे पर अनुग्रह करने के लिए परम् गोपनीय, अध्यात्मविषय वचन अर्थात

उपदेश आप के द्वारा जो कहा गया, उससे मेरा यह अज्ञान नष्ट हो गया है।[42] क्योंकि हे कमल नेत्र! मैंने भूतों की उत्पत्ति और प्रलय आपसे विस्तारपूर्वक सुने हैं तथा आप से अविनाशी प्रभाव भी सुना है।[43] हे परमेश्वर! आप अपने को जैसा कहते हो यह ठीक ऐसा ही है। परन्तु हे पुरुषोत्तम! आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य, एवं तेजयुक्त रूप को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ।[44] हे प्रभो! यदि मेरे द्वारा वह आपका रूप देखा जाना सम्भव है तो हे योगेश्वर! आप अपने अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराइये।[45] अर्जुन के ऐसा कहने पर भगवान् श्रीकृष्ण उसे अपने विराट स्वरूप का दर्शन कराते हैं। वे अर्जुन से कहते हैं 'हे पार्थ! मेरे सैकड़ों तथा हजारों नाना प्रकार के और नाना वर्ण तथा आकृति वाले अलौकिक रूप को देख।[46] मेरे में आदित्यों को, आठ वसुओं को, एकादश रूद्रों को तथा दोनों अश्विनी कुमारों को और उनचास मरुद्गणों को देख तथा और भी बहुत पहले से न देखे हुए आश्चर्यमय रूपों को देख।[47] अब इस मेरे शरीर में एक जगह स्थित हुए चराचर सहित सम्पूर्ण जगत को देख तथा और भी जो कुछ देखना चाहता है, सो देख।[48] क्योंकि यह सब प्राकृत नेत्रों से देखना संभव नहीं है इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को दिव्य दृष्टि प्रदान करते हैं इस प्रकार भगवान् ने अर्जुन को अपने परम ऐश्वर्य रूप का दर्शन कराया।

कृष्ण का विराट रूप, दर्शन मोहभंग के संदर्भ में अभिव्यक्त हुआ है। विराट रूप दर्शन की वजह से, अर्जुन का अंहकार और अज्ञान विनष्ट होकर ज्ञान को अनावृत्त करता है। अर्जुन रूपी मनुष्य जो अपने अहंकार और मोह की वजह से अपने को सब कुछ समझकर कर्ममुक्त हो जाता है, उसे भगवान् विराट रूप दर्शन से उसकी क्षुद्रता का एहसास करा देते हैं और उसे आत्मज्ञान प्रदान कर विविधता में एकता का दर्शन करा देते हैं भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को प्रदत्त यह दिव्यदृष्टि वस्तुत: विविधता में एकता को देखने की दृष्टि है! विविधता में उसी एक ईश्वर की ज्योति को देखने की दृष्टि है।

दिव्यरूप दर्शन कृष्ण ने अन्य कई बार दिए हैं। बाल लीला के समय कृष्ण ने एक विराट रूप का दर्शन दिया था। माता यशोदा जब बालक कृष्ण के मिट्टी खाने पर डाटती हैं और मुँह खोलने के लिए कहती हैं तब बालक कृष्ण के मुँह खोलने पर यशोदा मैया को उनके मुँह में तीनों लोक दिखाई दिए। मैया घबरा गई। उनकी आँखें फटी रह गई।[51] महाभारत के अनुसार कृष्ण अपने विश्वरूप में दुर्योधन के सम्मुख तब प्रकट हुए थे जब कि सन्धि का अन्तिम प्रयत्न करने के लिए आए हुए कृष्ण को दुर्योधन ने बन्दी बना लेने का प्रयत्न किया था।[52] तीसरी बार भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपना विराट रूप दिखलाया।[53] श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण के विराट रूप दर्शन का औचित्य कई कराणों से हैं। कृष्ण अर्जुन के सखा हैं और कृष्ण परम् कारण भी है। श्रीमद्भगवद्गीता में उनकी अलौकिकता को स्थापित और अभिव्यक्त करने के लिए इस विराट रूप दर्शन की योजना की गई है। गीता के ग्यारहवें अध्याय में अर्जुन कहता है कि उसका मोह दूर हो गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह कृष्ण को अपना मित्र स्वरूप सामान्य मनुष्य नहीं मानता, अपितु उन्हें प्रत्येक वस्तु का कारण मानता है। अर्जुन अत्यधिक प्रबुद्ध हो चुका है और उसे प्रसन्नता है कि उसे कृष्ण जैसा मित्र मिला है, किन्तु अब वह यह सोचता है कि भले ही वह कृष्ण को हर एक वस्तु का कारण मान ले, किन्तु दूसरे लोग नहीं मानेगें। अत: इस अध्याय में वह सब के लिए कृष्ण की अलौकिकता स्थापित करने के लिए कृष्ण से प्रार्थना करता है कि वे अपना विराट रूप दिखलाएँ। ''जहाँ तक अर्जुन का संबंध है वह कृष्ण के कथनों से प्रोत्साहित हैं, किन्तु भविष्य में उन लोगों का विश्वास दिलाने के लिए, जो कृष्ण को सामान्य पुरुष सोच सकते हैं, अर्जुन चाहता है कि वह भगवान् को उनके विराट रूप में देखे जिससे वे ब्रह्माण्ड के भीतर से काम करते हैं, यद्यपि वे इससे पृथक् हैं। अर्जुन द्वारा भगवान् के लिए पुरुषोत्तम सम्बोधन भी महत्त्वपूर्ण है। चूँकि वे भगवान हैं इसलिए वह स्वयं अर्जुन के भी भीतर उपस्थित हैं, अत: वे अर्जुन की इच्छा को जानते हैं। वे यह समझते है कि अर्जुन को उनके विराट रूप का दर्शन करने की कोई लालसा नहीं है, क्योंकि वह उनको साक्षात् देखकर पूर्णतया संतुष्ट है। किन्तु भगवान् यह भी जानते है कि अर्जुन अन्य को विश्वास दिलाने के लिए ही विराट रूप का दर्शन करना चाहते हैं। अर्जुन को इसकी पुष्टि के निए कोई व्यक्तिगत इच्छा न थी। कृष्ण यह भी जानते है कि अर्जुन विराट रूप का दर्शन एक आदर्श स्थापित करने के लिए करना चाहते हैं, क्योंकि भविष्य में ऐसे अनेक धूर्त होंगे जो अपने आपको ईश्वर का अवतार बताएँगें। अत: लोगों को सावधान रहना होगा। जो कोई अपने को कृष्ण कहेगा, उसे अपने दावे की पुष्टि के लिए विराट रूप के लिए सन्नद्ध रहना होगा।''[54] यदि उसे अर्जुन के जिज्ञासा के रूप में देखें, तो भी यह प्रसंग उपयुक्त ठहरता है। अर्जुन इस बात को जानता है कि शाश्वत आत्मा सब वस्तुओं में निवास करती है, यह एक बात है और इसका दर्शन करना दूसरी बात है। अर्जुन दिव्य रूप को देखना चाहता है, अदृश्य ब्रह्म के दृश्यमान शरीर को और इस बात को कि वह परमात्मा 'जो सब वस्तुओं का जन्म और मृत्यु है' कैसा है? भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के इस जिज्ञासा को शान्त करने के लिए ही अपने विराट रूप का दर्शन देते हैं।

यह दिव्य रूप दर्शन एक आध्यात्मिक अनुभव है। डॉ. राधाकृष्णन की दृष्टि में भी यह दिव्य रूप दर्शन कोई किंवदन्ती या पौराणिक कथा नहीं है अपितु एक आध्यात्मिक अनुभव है।

धार्मिक अनुभव के इतिहास में इस प्रकार के अनेक दर्शनों का उल्लेख प्राप्त होता है। ईसा का रूपान्तर दमिश्क की सड़क पर साऊल का दर्शन, कौन्स्टैण्टाइन द्वारा एक क्रास का दर्शन, जिस पर कि ये शब्द अंकित थे इस चिन्ह को लेकर विजय करो, तथा जौन ऑफ के इसी प्रकार के दर्शन, अर्जुन के दिव्य रूप दर्शन की कोटि के ही अनुभव हैं।[55] स्वामी रामकृष्ण परमहंस, आचार्य शर्मा, महर्षि अरविन्द आदि महापुरुषों द्वारा प्राप्त दिव्यरूप दर्शन और आत्मसाक्षात्कार के ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। किन्तु अर्जुन द्वारा किया जाने वाला यह दर्शन विशिष्ट है। अर्जुन इस वैश्विक स्वरूप के दर्शन से मोह से मुक्त होकर कर्म मार्ग पर अग्रसर होता है। उसमें अर्जुन, ईश्वर के उस सर्वव्यापी स्वरूप के दर्शन करने में समर्थ होता है, जिसके समक्ष अच्छाई और बुराई, सुख और दु:ख, प्रकाश और अन्धकार इत्यादि के द्वन्द्व विलीन हो जाते हैं। विश्वव्यापी के इस विराट स्वरूप का दर्शन अर्जुन को चौंधिया देने वाला था और उसने जितना देखा वह भी उसकी दृष्टि के लिए असह्य था। यथार्थ में, अर्जुन का उस अद्वैत विश्वरूप के दर्शन के लिए जो सापेक्ष और आंशिक रूप के परे है दिव्य दृष्टि दी गई थी, इसका अर्थ यह है कि जब योगी पवित्र और समर्पित जीवन, ममत्व भाव की साधना और ध्यान के द्वारा अपने-आपको विश्व में मिला देता है और समस्त सृष्टि की परम् एकता का अनुभव कर लेता है, तब उसकी मुमुक्षु आत्मा सर्वव्यापी ईश्वर की एक झलक पा सकती है। संजय जिसने अंधे महाराज धृतराष्ट्र को महाभारत का सारा वर्णन सुनाया था, ने अर्जुन के समक्ष प्रकट किये गए विराट रूप का वर्णन किया है। वह परब्रह्म का उस पूर्ण का ही स्वरूप था, जो समस्त सृष्टि को व्याप्त किये है और जिसमें अच्छाई तथा बुराई, सुन्दर तथा असुन्दर, मधुर, भयानक और सुखद तथा दु:खद के द्वन्द्व भी समाये हुए हैं।[56]

सांसारिक दृश्य प्रपंच में वास्तविकता का भाव होना ही अज्ञान है। इसी अज्ञान से मोह उत्पन्न होता है। भगवान् इस जगत को सत्य न मानकर आत्मसाक्षात्कार का उपदेश देते हैं और आत्मसाक्षात्कार के लिए वे अर्जुन को दिव्य दृष्टि प्रदान करते हैं। ''वास्तव में दिव्यदृष्टि न तो सम्मोहन है न कोई क्रिया विशेष या शक्ति विशेष। जीव मात्र की जो सामान्य दृष्टि (भगवान की माया से ग्रसित जिस दृष्टि में सांसारिक विषय वासना, लोभ, क्रोध, मद, मोहादि एवं अपना पराया आदि माया ममता व्याप्त है) है वह सांसारिक दृष्टि है। लेकिन जब जीवन के कलुषों का प्रक्षालन (पापों का क्षय) हो जाता है, तब उस समय समस्त सांसारिक माया-ममता, विषय-वासना, मोह मद आदि का क्षय हो जाता है। अत: अन्त:करण की शुद्धि से उस समय जीव की जो दृष्टि होती है (सांसारिक स्वार्थ की शुद्धि एव प्रपंच से परे जितने भी सिद्ध संत महात्मा हैं उन्हें ऐसी दिव्य दृष्टि स्वत: प्राप्त हो जाती हैं) और दिव्य दृष्टि प्राप्त होने पर उसे स्वत: ही समस्त सृष्टि समस्त जीव, समस्त चराचर, परमात्मा का ही रूप दिखाई देता है 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' अथवा 'ईशावास्यमिदं सर्वं' अथवा गीता के ही शब्दों में 'वासुदेव: सर्वमिति' इत्यादि। ऐसी ही दिव्य दृष्टि भगवान् ने अर्जुन को प्रदान की।''[57]

आधुनिक शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य मनुष्य को उसकी विभिन्न संकीर्णताओं से उपर उठाकर उसकी दृष्टि को व्यापक बनाना है तथा विविधता में ऐक्य का दर्शन कराना है। प्राचीन शिक्षा प्रणाली, जहाँ विविध कथाओं के अध्ययन में आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करती थी, वैसे ही आधुनिक शिक्षा, अपनी तत्त्वमीसांसा से नागरिकता की समझ विकसित करती है। आधुनिक वैज्ञानिक समझ से व्यक्ति इस वैविध्यपूर्ण जगत में एकता का दर्शन कर सकता है। आधुनिक भौतिक विज्ञान की तत्त्वमीमांसा के अनुसार संपूर्ण वैश्विक पदार्थ कुल 109 तत्त्वों के परमाणुओं से और सभी पदार्थ के परमाणु इलेक्ट्रान, प्रोट्रान एवं न्यूट्रान आदि कुछ मूलकणों से निर्मित हैं। अर्थात संपूर्ण जगत की संरचना कुछ इन्हीं मूलकणों पर आधारित है। इसी प्रकार प्रत्येक प्राणियों का निर्माण छोटी-छोटी जैविक कोशिकाओं से हुआ है। तो इनको जानने वाला क्या सम्पूर्ण जगत में एकता का अनुभव नहीं कर सकता। इसके लिए एक व्यापक अर्न्तदृष्टि की आवश्यकता है। कुछ यही अर्न्तदृष्टि भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को दी थी। इसको देखने के लिए केवल बाह्य दृष्टि पर्याप्त नहीं है। मानवीय आँख केवल बाह्य रूपों को देख सकती है आन्तरिक आत्मा का ज्ञान आत्मिक आँख से होता है। एक प्रकार का ऐसा ज्ञान होता है, जिसे हम अपने प्रयत्नों द्वारा प्राप्त कर सकते हैं- इन्द्रियों द्वारा प्रदत्त अनुभव और बौद्धिक गतिविधि पर आधारित ज्ञान। 'एक और प्रकार का ज्ञान उस समय हो सकता है, जब कि हम चारुता के प्रभाव के आधीन हों- आत्मिक वास्तविकताओं का प्रत्यक्ष ज्ञान। देवता का दर्शन देवता की ही देन है। यह सारा विवरण दिव्य प्रकृति में नानाविध विश्व की एकता को सूचित करने का एक काव्यपूर्ण ढंग है। यह दर्शन कोई मानसिक कल्पना नहीं है, अपितु सीमित मन से परे एक सत्य का उद्घाटन है।[58] स्पष्टत: इस सत्य का साक्षात्कार आधुनिक युग का मनुष्य भी कर सकता है।

अर्जुन का क्लेश और कृष्ण का समाधान -

अर्जुन के क्लेश का कारण मोह है। महाभारत के युद्ध के मैदान में अपने सारथी श्रीकृष्ण से, जब वह अपने रथ को बीच में ले चलने के लिए कहता है जिससे वह अपने प्रतिपक्ष में लड़ने वाले योद्धाओं को देख सके तो वहाँ उसनें अपने ही सम्बन्धियों, चाचा, ताऊ, आदि को देखकर युद्ध की निरर्थकता का भाव आता है। उसके मन में मोह का भाव उत्पन्न होता है। इस मोह के कारण उसमें अज्ञानता आती है, ज्ञान पर पर्दा पड़ जाता है। अर्थात उसका

विवेक क्षीण होने लगता है। फलतः वह कर्त्तव्य विमुख हो जाता है। वह यह भूल जाता है कि इस मैदान में वह युद्ध के लिए आया है और वह चाहकर भी इस युद्ध को रोक नहीं सकता है, उसे कौरवों के अत्याचार से युक्ति पाने के लिए लड़ना ही पड़ेगा। इस मोह की वजह से वह कर्त्तव्यच्युत हो जाता है। मोह निवृत्ति, सत्य के ज्ञान का एक पक्ष है न कि वह अपने आप में ज्ञान की प्राप्ति। अर्जुन अज्ञान के कारण नाम रूपमय इस सृष्टि में अपना अलग और स्वतंत्र अस्तित्व अनुभव कर रहा था। वह अब इस भेद के मोह से मुक्त हो चुका था। श्रीकृष्ण के माध्यम से उसे वह दृष्टि मिल गयी, जिसके द्वारा वह इस भेदात्मक दृश्य जगत में ही व्याप्त सत्ता को देख पान में समर्थ हो जाता है।[59] श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इसी मोह से मुक्त किया है। श्रीकृष्ण अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारते नहीं है अपितु अर्जुन के भीतर वह बोध भरते हैं कि वह कर्त्तव्य मार्ग पर अग्रसर हो सके। श्रीकृष्ण बस उसे कर्त्तव्य बोध का ज्ञान करा देते हैं। कृष्ण ने अर्जुन को अपनी प्रपत्ति प्रदान कर उसके भीतर आंतरिक ऊर्जा का संचार कर दिया। ''श्रीकृष्ण ने उत्तोलक की भाँति व्यामोह के दलदल में फँसे हुए अर्जुन के मन को ऊपर उठा दिया। निष्प्राण में प्राण, निरुत्साह में उत्साह का संचार करने वाली, भीतर प्रसन्नता जगाने वाली, भटकते हुए किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्ति को राह दिखाने वाली, ओजस्वी प्रकाशमयी एवं दिव्य वाणी को सुनकर, अर्जुन को अपने दायित्व एवं कर्त्तव्य का बोध हो गया और उसने कहा- 'करिष्ये वचनं तव' मैं आपके प्रसाद से मोहमुक्त एवं सन्देहमुक्त होकर, आपकी बात मानकर, कर्त्तव्य-पालन के लिए खड़ा हो गया हूँ।' श्रीकृष्ण की दिव्य वाणी ने अंधकार में प्रकाश जगा दिया, चिन्ता और विषाद को दूर कर दिया तथा अर्जुन को इस नवचेतना द्वारा नवजीवन प्रदान कर दिया। अर्जुन श्रीकृष्ण की वाणी सुनकर कर्त्तव्य पालन में जुट गया और कृतार्थ हो गया।''[60] फलतः अर्जुन के निमित्त मात्र बनने से भू-भार-हरण संभव हो सका।

संदर्भः

1. द्रष्टव्य - श्रीमद्भगवद्गीता, साधक-संजीवनी, स्वामी रामसुखदास, पृष्ठ 45 ।
2. श्रीमद्भगवद्गीता 2/9 ।
3. द्रष्टव्य - श्रीमद्भगवद्गीता, साधक-संजीवनी, स्वामी रामसुखदास, पृष्ठ 42 ।
4. श्रीमद्भगवद्गीता 1/21 ।
5. श्रीमद्भगवद्गीता 1/22 ।
6. गीता-रसामृत, शिवानन्द 55 ।
7. श्रीमद्भगवद्गीता 1/28, 29 ।
8. श्रीमद्भगवद्गीता 1/30 ।
9. श्रीमद्भगवद्गीता 1/31 ।
10. श्रीमद्भगवद्गीता 1/32 ।
11. गीता-रसामृत, शिवानन्द, पृष्ठ 55, 56 ।
12. श्रीमद्भगवद्गीता, जीवन-विज्ञान, धर्मेन्द्र मोहन सिन्हा, पृष्ठ 14 ।
13. गीता-रसामृत, शिवानन्द, पृष्ठ 57 ।
14. श्रीमद्भगवद्गीता, साधक-संजीवनी, हिन्दी टीका, स्वामी रामसुखदास, पृष्ठ 47 ।
15. श्रीमद्भगवद्गीता, साधक-संजीवनी, हिन्दी-टीका, स्वामी रामसुखदास, पृष्ठ 45 ।
16. श्रीमद्भगवद्गीता, जीवन-विज्ञान, धर्मेन्द्र मोहन सिन्हा, पृष्ठ 26 ।
17. श्रीमद्भगवद्गीता, साधक-संजीवनी, हिन्दी-टीका, स्वामी रामसुखदास, पृष्ठ 45 ।
18. श्रीमद्भगवद्गीता, तत्त्वविवेचनी, हिन्दी-टीका, जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 43 ।
19. श्रीमद्भगवद्गीता, जीवन-विज्ञान, धर्मेन्द्र मोहन सिन्हा, पृष्ठ 22 ।
20. गीता-रसामृत, शिवानन्द, पृष्ठ 26 ।
21. श्रीमद्भगवद्गीता, 1/43 ।
22. श्रीमद्भगवद्गीता, साधक-संजीवनी, हिन्दी-टीका, स्वामी रामसुखदास, पृष्ठ 46 ।
23. गीता-ज्ञान दीपिका, डॉ. देवीसहाय पाण्डेय 'दीप', पृष्ठ 18 ।
24. गीता-रसामृत, शिवानन्द, पृष्ठ 56 ।
25. श्रीमद्भगवद्गीता, तत्त्वविवेचनी, हिन्दी-टीका, जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 41 ।
26. गीता माता, मोहनदास करमचन्द गाँधी, पृष्ठ 72 ।
27. गीता-ज्ञान दीपिका, डॉ. देवी सहाय पाण्डेय 'दीप', पृष्ठ 18 ।
28. गीता का तात्त्विक विवेचन, आचार्य भाष्करानन्द लोहनी, पृष्ठ 116।
29. गीता-ज्ञान दीपिका, डॉ. देवी सहाय पाण्डेय 'दीप', पृष्ठ 10 ।
30. लोकनायक श्रीकृष्ण, डॉ0 विद्याभास्कर वाजपेयी, पृष्ठ 17 ।
31. गीता-रसामृत, शिवानन्द, पृष्ठ 14 ।
32. गीता का तात्त्विक विवेचन, आचार्य भाष्करानन्द लोहनी, पृष्ठ 116 ।
33. श्रीमद्भगवद्गीता, 4/3 ।
34. श्रीमद्भगवद्गीता, साधक-संजीवनी, हिन्टी-टीका, स्वामी रामसुखदास, पृष्ठ 43 ।
35. श्रीमद्भगवद्गीता 2/57 ।
36. श्रीमद्भगवद्गीता, साधक-संजीवनी, हिन्टी-टीका, स्वामी रामसुखदास , पृष्ठ 37 ।
37. गीता-रसामृत, शिवानन्द, पृष्ठ 100 ।
38. गीता रसामृत, शिवानन्द, पृष्ठ 86 ।
39. श्रीमद्भगवद्गीता 11/1 ।
40. श्रीमद्भगवद्गीता 11/2 ।
41. श्रीमद्भगवद्गीता 11/3 ।
42. श्रीमद्भगवद्गीता 11/5 ।
43. श्रीमद्भगवद्गीता 11/6 ।
44. श्रीमद्भगवद्गीता 11/7 ।
45. श्रीमद्भगवद्गीता 11/8 ।
46. पुष्टि पुरूषोत्तम कन्हैया की बाल लीला, डा0 गजानन शर्मा, पृष्ठ 40 ।
47. भगवद्गीता डॉ. राधाकृष्णन, पृष्ठ 242 ।
48. श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, स्वामी प्रभुपाद, पृष्ठ 451 ।
49. श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, स्वामी प्रभुपाद, पृष्ठ 453 ।
50. भगवद्गीता डॉ0 राधाकृष्णन्, पृष्ठ 242 ।
51. श्रीमद्भगवद्गीता राजगोपालाचार्य, पृष्ठ 87 ।
52. गीता का तात्त्विक विवेचन, आचार्य भास्करानन्द लोहनी, पृष्ठ 116 ।
53. भगवद्गीता, राधाकृष्णन्, पृष्ठ 243 ।
54. श्रीमद्भगद्गीता, भाग-11, स्वामी चिन्मयानन्द, पृष्ठ 06 ।
55. गीता-रसामृत, शिवानन्द, पृष्ठ 15 ।

◆◆◆